कुछ सराय/की

रवीन्द्र कुमार

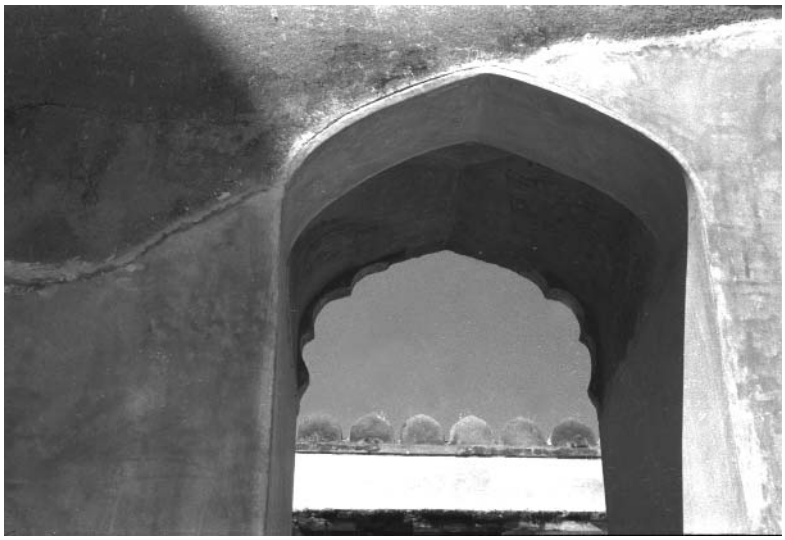

दिल्ली के चाँदनी चौक में फ्रांसीसी यात्री बर्नियर खड़ा था और सामने बनी हुई बेगम की सराय को कुछ विस्मय की दृष्टि से देख रहा था। दोमंज़िला सराय एक विशालकाय भवन के रूप में उसे चकित भी कर रही थी और मन ही मन वह अपने देश की राजधानी पेरिस से इस भवन की तुलना भी कर रहा था। हर दिन की तरह रात में जब थक कर वह सोने के लिए जाता था तब दिन भर घटी हुई घटनाओं को जल्दी-जल्दी याद कर दोहराता था। जो उसे महत्व की बात लगती थी उसे अपनी डायरी में दर्ज भी कर लेता था। लगता था बेगम की सराय ने उसके मन पर गहरा असर छोड़ा था। 1663 में हिन्दुस्तान के अपने संस्मरण बर्नियर ने एक पत्र के रूप में अपने मित्र वाएर के लिए दर्ज किए थे। पहली जुलाई को लिखे गए इस पत्र में उसने हिन्दुस्तान की दो राजधानियों, दिल्ली और आगरा के विषय में विस्तार से विवरण दिया था। शहंशाह के दरबार और उससे संबंधित रोचक वृत्तांत के साथ ही बर्नियर ने बेगम की सराय के विषय में भी विस्तार से लिखा थाः "नगर के दो भवनों का मैं विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूँगा। एक है नगर की सबसे प्रमुख मस्जिद जो आबादी के बीच एक ऊँची चट्टान पर बनाई गई है और दूर से भी किसी को स्पष्ट नज़र आती है। दिल्ली नगर निगम का दूसरा क़ाबिलेग़ौर भवन कारवाँसराय कहलाता है — शहज़ादी की कारवाँसराय। इसकी तामीर शाहजहाँ बादशाह की बड़ी बेटी ने करवाई थी, जिनको दिल्ली के मुग़ल साम्राज्य के दीगर बाशिन्दे बेगम साहब के अदबी तख़ल्लुस से नवाज़ते हैं। यह कारवाँसराय एक विशालकाय चौकोर भवन के रूप में है जिसके चारों ओर मेहराबदार बरामदे फैले हुए हैं। ये दूर तक फैली मेहराबें हमारे राजमहल की तरह ही हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि इस कारवाँसराय की हर मेहराब एक-दूसरे से एक दरम्यानी दीवार से अलग कर दी गई है ताकि इनको कमरे की शक्ल में आसानी से इस्तेमाल किया जा सके। दरअसल हर मेहराब के पीछे अन्दर की तरफ़ एक कमरा खुलता है जिसको सामने की मेहराब के सामने जोड़कर पूरी तरह रिहायशी इकाई बन जाती है। इन मेहराबों के ऊपर, दूसरी मंज़िल पर भी, इसी शक्ल की लम्बी गैलरी बनी हुई है जो भवन के चारों ओर फैल जाती है। जैसे नीचे की मंज़िल में कमरे हैं ठीक उसी तरह ऊपर की मंज़िल में भी कमरे बने हुए हैं।" बर्नियर आगे लिखता है : "यह कारवाँसराय

उन अमीर व्यापारियों के ठहरने की जगह है जो दिल्ली में ईरान, उज़्बेकिस्तान जैसे सुदूर प्रदेशों से व्यापार के मक़सद से आते हैं। आम तौर पर इस कारवाँसराय के ख़ाली कमरे ये व्यापारी किराए पर ले लेते हैं और अपनी ज़रूरतों के अनुसार कमरों को सजा लेते हैं। यहाँ अपना क़ीमती सामान ये लोग पूरी हिफ़ाज़त से रख सकते हैं और रात के समय कारवाँसराय का दरवाज़ा बन्द हो जाने के बाद भयरहित निद्रा का आनन्द ले सकते हैं। यदि पेरिस में भी इसी प्रकार के कई भवन होते, जो कि नगर के विभिन्न भागों में बने होते, तो नगर में बाहर से आने वाले अजनबियों को आज के मुक़ाबले कहीं कम मुसीबतों का सामना करना पड़ता। नगर में अपने प्रथम आगमन के साथ ऐसे लोग कुछ दिनों के लिए सुगमतापूर्वक, ऐसे भवनों में रुक सकते और लम्बे प्रवास के लिए अपने परिचितों का पता-ठिकाना आसानी से तलाश कर सकते। इस तरह के भवन विदेशी व्यापारियों को अपना सामान सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक भंडारण की सुविधा भी देते तथा अनेक प्रकार की सामग्री पेरिस के नगरवासियों के लिए उपलब्ध कराने की पहल भी करते।"

दिल्ली की बेगम साहब की कारवाँसराय की यह छवि बर्नियर के मन पर काफ़ी गहरे में अंकित हो गई थी। आगरा नगर का वृत्तांत लिखते समय भी वह हिन्दुस्तान के कारवाँसरायों का महत्व अंकित करना नहीं भूला। उसने लिखाः "हिन्दुस्तान के बादशाहों का आगरा प्रिय निवास-स्थल था और यहाँ वे लोग (दिल्ली की तुलना में) अधिक समय तक टिके रहे थे। अकबर के समय से आगरा की काफ़ी उन्नति हुई थी और अकबराबाद के नए नाम से संबोधित यह नगर दिल्ली की तुलना में निश्चित रूप से अधिक बड़े क्षेत्रफल में बसा हुआ था। यहाँ उमराओं और राजाओं के भव्य निवास भवन थे और व्यक्तिगत तौर पर भी बनने वाले निवास-स्थान उत्तम क़िस्म के पत्थरों और पक्की ईंटों से बनाए गए थे। यहाँ की कारवाँसराएँ भी सुविधा तथा संख्या, दोनों दृष्टि से, दिल्ली से बेहतर थीं।" शायद कुछ दिनों पहले लिखे गए एक अन्य पत्र में कारवाँसरायों के विषय में दिए गए अपने मंतव्य से बर्नियर अब सहमत नहीं था — विशेषकर दिल्ली की बेगम साहब की कारवाँसराय और आगरा नगर की कारवाँसरायों को देखने के बाद उसकी मनःस्थिति बदल गई थी। यह पहले का पत्र फ्रांस के वित्त मंत्री कोलबर्ट को हिन्दुस्तान का जायज़ा देने के लिए बर्नियर द्वारा कुछ समय पूर्व लिखा गया था और पूरब की इन इमारतों के लिए हिक़ारत-पूर्ण शब्दों का प्रयोग किया गया था। कारवाँसरायों को खलिहानों के साथ बनी भुसौरियों जैसा तंग और घुटन वाले स्थान के रूप में बयान किया गया था। बर्नियर के नज़रिए में यह बदलाव, ख़ासकर सराय की इमारतों के विषय में, बेबुनियाद और क्षणिक भावावेश की देन के रूप में नहीं देखा जा सकता। चाँदनी चौक की ख़ूबसूरत कारवाँसराय को देखकर ही बर्नियर ने अपनी राय बदली थी। वहाँ की चहल-पहल, रौनक़, अमीर ईरानी, उज़्बेकी व्यापारियों के वैभव ने ही उसे यह लिखने के लिए प्रेरित किया था कि काश ऐसी कारवाँसराएँ पेरिस में भी होतीं। हिन्दुस्तान के बड़े शहरों में लगभग चाँदनी चौक जैसी ही सराएँ बनने लगी थीं और मुग़ल काल का बीच का समय हिन्दुस्तान के अलग-अलग हिस्सों से यात्रा करने वाले व्यापारियों तथा विदेशी व्यापारियों की सुविधा के लिए ऐसी सरायों के तामीर का एक अहम समय था।

एक संस्था के रूप में सराएँ असल में मध्य एशिया तथा तुर्की सुल्तानों की हुकूमत क़ायम होने के साथ यहाँ भी प्रवेश कर चुकी थीं। इस आरंभिक काल में — सरायों के हिन्दुस्तान में इतिहास के संदर्भ में — हमें दिल्ली नगर के मुहानों पर बनी हुई सरायों के मेवाती लुटेरों द्वारा बलबन के शासन काल में लूटे जाने के उल्लेख मिलते हैं। ज़ाहिर है कि शहर की सीमाओं पर बनी हुई इन सरायों में हिफ़ाज़त के इतने इन्तज़ाम करना आसान नहीं था जिससे मेवातियों की लूटपाट से इन्हें बचाया जा सके। ज़ियाउद्दीन बरनी, जिसने चौदहवीं शताब्दी में मुहम्मद तुग़लक के शासन काल में दिल्ली सल्तनत का ऐतिहासिक वृत्तांत लिखा है, मेवातियों की इस लूटपाट का ज़िक्र करते समय लिखता है कि उसे अपने पूर्वजों से पता चला था कि सुलतान बलबन ने बहुत कड़ाई से मेवातियों का दमन किया था। नतीजा यह हुआ था कि फिर कभी दिल्ली शहर की सरहद पर इस तरह के हमले मेवातियों ने नहीं किए।

सरायें यात्रा करने वाले मुसाफ़िरों के रास्ते में ठहरने के लिए समुचित प्रावधान करने के उद्देश्य से बनवाई जाती थीं। हिन्दुस्तान में जिस शक्ल में यह संस्था तुर्कों के शासन के साथ आई उसकी इमारती तफ़्सील और बन्दोबस्त के बारे में सबसे अधिक जानकारी शेरशाह सूरी के शासनकाल से संबंधित इतिहास में और फिर मुग़ल

बादशाहों से संबंधित इतिहास में पायी जाती है। सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध आते-आते सरायें एक सुव्यवस्थित संस्था के रूप में पूरी तरह विकसित हो चुकी थीं और स्थान तथा आवश्यकता के अनुसार इनके संरचनात्मक स्वरूप में परिवर्तन भी परिलक्षित होने लगे थे। हिन्दुस्तान के बड़े शहरों में बनने वाली सराएँ आमतौर पर सुदूर प्रांतों अथवा देशों से आने वाले यात्रियों की तात्कालिक आवास व्यवस्था की आवश्यकता की पूर्ति को ध्यान में रखकर बनाई जाती थीं। बर्नियर के वृत्तांत से हमें इनके विन्यास तथा इनके अन्दर उपलब्ध आवासीय स्थान एवं भंडारण व्यवस्था का स्पष्ट संकेत मिलता है। सराय विन्यास में प्रायः चौकोर रूपरेखा का प्रयोग किया जाता था जो स्थान विशेष की ज़रूरतों के अनुसार वर्गाकार अथवा आयताकार हो सकता था। सराय की इमारत चारों ओर से एक परकोटे से घिरी होती थी। इस परकोटे की किसी एक अथवा दो दीवारों में प्रवेश-द्वार बनाया जाता था। यदि प्रवेश-द्वार दो दीवारों में होता था तो आमतौर पर आमने-सामने की दीवारों का प्रयोग होता था। सराय के यह प्रवेश-द्वार काफ़ी बड़े आकार के दो-मंज़िला भवन के रूप में बनाए जाते थे जिससे सराय में आने-जाने वाले सामान इत्यादि का विस्तृत विवरण अंकित करने वाले कार्यालय को इसी भवन में सुचारू रूप से चलाया जा सके। प्रवेश-द्वार की ऊपरी मंज़िल पर बने हुए कमरे तथा अन्य स्थान सराय की व्यवस्था संभालने वाले कार्यकर्त्ताओं की आवासीय आवश्यकता की पूर्ति करते थे। प्रवेश-द्वार के मध्य से होकर गुज़रने वाला रास्ता सराय के परकोटे के अंदर अवस्थित विस्तृत खुले स्थान में आगन्तुकों को ला खड़ा करता था। परकोटे की भीतरी दीवारों के साथ लगकर कमरों की शृंखला बनाई जाती थी जो स्थान की उपलब्धता के अनुसार एक अथवा दो इकाइयों से जुड़कर तैयार होती थी। कभी-कभी दो इकाइयों के अतिरिक्त एक लम्बी गैलरी भी इन कमरों के सामने से होकर चारों ओर गुज़रती थी। जिन दीवारों में प्रवेश-द्वार होते थे उनमें भी बची हुई जगह में कमरे बनाए जाते थे।

सराय के बीच में छोड़ा गया खुला आंगन विविध प्रयोग में लाया जाता था। गरमी के दिनों में मुसाफ़िरों के सोने के लिए, समृद्ध यात्रियों के साथ आयी गाड़ियाँ रखने के लिए, उनकी सवारी के जानवरों को बाँधने के लिए और कभी-कभी जब सराय का प्रयोग राज्य के बड़े अधिकारियों एवं कुलीन वर्ग के सदस्यों द्वारा किया जाता था, तब उनके आवास के लिए समुचित शिविर लगाने के लिए आंगन का प्रयोग होता था। बड़े आकार के सराय भवनों में सौ-डेढ़ सौ तक कमरे होते थे एवं यह कमरे दो-मंज़िला भी होते थे। पटना नगर में बनी हुई सराय के दो-मंज़िला कमरों में ठहरने वाले ईरानी यात्रियों का विस्तार से उल्लेख पीटर मुंडी नामक यात्री करता है। पीटर मुंडी इटली का मूल निवासी था तथा शाहजहाँ के शासन काल में भारत यात्रा पर आया था। सराय के खुले आंगन में पानी के लिए एक या दो पक्के कुएँ होते थे तथा कभी-कभी एक छोटे आकार की मस्जिद भी यहीं बना दी जाती थी जिसका प्रयोग सराय में स्थायी रूप से रहने वाले कर्मचारी तथा सराय में ठहरने वाले यात्री समान रूप से इबादत के लिए करते थे। बड़े नगरों के अन्दर बनने वाली सरायों में कभी-कभी इस खुले स्थान का उपयोग साप्ताहिक अथवा दैनिक बाज़ार के लिए भी किया जाता था। यहाँ विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ जिनके सराय में ठहरे हुए मुसाफ़िर ख़रीदार हो सकते थे, विक्रय के लिए दिन में लायी जाती थीं तथा शाम होते-होते बाज़ार समेट दिया जाता था। पंजाब में लुधियाना के निकट बनी हुई सराय दोराहा में तो दुकानों को निर्धारित करने के लिए पक्के चबूतरे इस खुले स्थान में बना दिए गए थे जिन पर अपने सामान के साथ विक्रेता सुगमतापूर्वक बैठ सकता था।

सराय की इमारतों में व्यापारियों का सामान सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक भंडारण-व्यवस्था प्रायः सराय के चारों कोनों पर उपलब्ध स्थान में की जाती थी। बाहर से कोनों के यह स्थान गोलाकार अथवा अष्टभुजी बुर्ज़ के रूप में बनाए जाते थे। इन बुर्ज़ों के अन्दर की जगह भंडार गृह के रूप में प्रयुक्त होती थी। बड़े आकार के सराय भवनों में किसी एक कोने में स्थित यह स्थान हम्माम बनाने के लिए भी प्रयोग में लाया जाता था। सराय दोराहा, जिसका उल्लेख हमने ऊपर किया है तथा आगरा नगर के अन्दर स्थित छीपीटोला मुहल्ले में बनी

हुई सराय में हम्माम आज भी बना हुआ है। महाराष्ट्र तथा गुजरात की सीमा पर स्थित नवानगार नामक मंझोले नगर में बनाई गई सराय में हम्माम की संरचना खुले आंगन में स्थित मस्जिद के साथ जोड़कर की गई है।

मध्यकालीन भारत में, विशेषकर सत्रहवीं शताब्दी में, हमें छोटे-बड़े सराय भवनों का एक विस्तृत रूप में फैला हुआ तंत्र देखने को मिलता है। प्रायः यह सराय भवन चारों ओर विस्तृत राजमार्गों पर अवस्थित थे तथा इस बात को ध्यान में रखकर बनाए गए थे कि एक अथवा दो दिनों की यात्रा करने के बाद यात्री सुगमता से किसी न किसी सराय में डेरा डाल सकें। मध्यकालीन भारत के, विशेषकर मुग़ल सीमा में आने वाले, बड़े नगरों में सरायों की इमारतें विशालकाय होती थीं तथा नगर के प्रवेश स्थान एवं नगर के मध्य कहीं, स्थित होती थीं। दिल्ली जैसे बड़े नगर में आने वाले तमाम तरह के यात्रियों के लिए कई ऐसी बड़ी सरायों की आवश्यकता थी। अलग-अलग शासनकालों में बनने वाली यह बड़ी सराएँ दिल्ली में प्रत्येक दिशा में प्रवेश करने वाले द्वारों पर अवस्थित थीं। उत्तर दिशा से आने वाले राजमार्ग के नगर प्रवेश स्थल के समीप ही बादली की विशाल सराय स्थित थी। इस विशालकाय भवन के बादली गाँव में स्थित होने के कारण ही यह सराय "बादली की सराय" नाम से जानी जाती थी। अठारह सौ सत्तावन के विप्लव में बादली की सराय का प्रयोग विप्लवकारियों द्वारा एक क़िले के रूप में किया गया था। चारों ओर से ऊँचे परकोटे से घिरे होने के कारण तथा मज़बूत प्रवेश भवनों के कारण इसके अन्दर पर्याप्त सुरक्षा उपलब्ध थी। विप्लव के असफल होने के बाद इस सराय को अंग्रेज़ी सेना ने तोपों से उड़ाने का प्रयत्न किया। परिणाम के रूप में परकोटे की दीवार तथा उसके साथ बने हुए कमरे ध्वस्त हो गए। परन्तु दोनों ऊँचे प्रवेश-द्वार भवनों को पूरी तरह गिराना संभव नहीं हो पाया। आज भी आज़ादपुर से थोड़ा आगे बादली की सराय के दोनों प्रवेश-द्वार खड़े हुए हैं।

पूर्व से दिल्ली में प्रवेश के लिए शाहदरा में बड़ी सराय बनाई गई थी। इसी प्रकार पश्चिम दिशा से नगर के प्रवेश स्थल पर पालम के समीप एक विशालकाय सराय स्थित थी। इसी सराय के दोनों प्रवेश-द्वार अब भी कमोबेश अपने मूल स्वरूप में देखे जा सकते हैं। सराय के कमरों का अब रिहायश के लिए इस प्रकार प्रयोग कर लिया गया है कि उनकी मूल पहचान उपलब्ध नहीं है। महरमनगर बस्ती की इस सराय के साथ ही लगा हुआ एक अन्य आयताकार स्थान था जिसके अन्दर कुछेक भवन बने हुए थे। इस स्थान का प्रयोग बाज़ार के लिए किए जाने का वृत्तांत मिलता है। ऐसा लगता है कि इस स्थान पर दैनिक बाज़ार के बजाय अधिक स्थायी रूप से विक्रेता अपना सामान व्यवस्थित करते थे तथा सराय के यात्रियों के साथ-साथ आसपास की आबादी के लिए भी इस बाज़ार से अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ ख़रीदने की सुविधा थी।

दिल्ली के दक्षिणी प्रवेश-द्वार के पास औरंगज़ेब के बड़े मनसबदार बख़्तावर ख़ाँ द्वारा बहुत बड़ी सराय का निर्माण करवाया गया था। यह सराय दो बड़े प्रांगणों को जोड़कर बनाई गई थी। दोनों प्रांगण समान रूप से सुविधासंपन्न होने के साथ ही स्वतंत्र इमारतों के रूप में भी प्रयोग में लाए जा सकते थे। आवश्यकतानुसार दोनों भागों को, बीच में बने प्रवेश द्वार को खोलकर एक साथ प्रयोग में लाया जा सकता था। इसके अतिरिक्त दोनों भागों को, बीच में बने प्रवेश द्वार को खोलकर एक साथ प्रयोग में लाया जा सकता था। इसके अतिरिक्त दोनों भागों में अपने-अपने अलग प्रवेश द्वार के पास ही एक ऊँचे चबूतरे पर बड़ी मस्जिद भी बनाई गई थी। स्पष्ट है कि यह मस्जिद प्रवेश द्वार के पास होने के कारण, सराय में रुकने वाले यात्रियों तथा सराय कर्मचारियों के साथ-साथ आसपास की बस्तियों में रहने वाले लोगों के लिए भी सुविधाजनक थी। बख़्तावर ख़ाँ की यह सराय आज भी अच्छी हालत में खड़ी हुई है और महरमनगर की सराय की भाँति ही एक बड़ी बस्ती को समाए हुए है जो बख़्तावर नगर कहलाती है। दिल्ली से आगरा जाने वाले राजमार्ग पर बदरपुर के पास सड़क के बायीं ओर ही यह इमारत देखी जा सकती है। इसकी मस्जिद इतनी ऊँची बनाई गई है कि दूर से ही नज़र आ जाती है। पहले यह राजमार्ग इस सराय के बीच से होकर ही गुज़रता था, पर आबादी बढ़ते जाने के कारण इसे हटाकर मौजूदा स्थान पर ला दिया गया है। दिल्ली के चारों प्रवेश स्थलों पर बनी हुई इन सरायों में तत्कालीन समय की बहुत सी पहचानें समाई हुई हैं। यहाँ की चहल-पहल, सराय के यात्रियों की अनेकरूपता तथा कर्मचारियों के साथ उनके संबंध, इन सबसे उपजा एक अलग प्रकार का समाज — कितने ही ऐसे पहलू हैं जो *दीवान-ए-सराय* के अलग-अलग अध्याय बनने की संभावना रखते हैं। पर वह सब फिर कभी।